IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

मुक्तिबोध के काव्य में सामाजिक यथार्थ

– विकाश पाठक
सहायक प्राध्यापक, हिंदी
शासकीय महाविद्यालय देवतालाब, रीवा मप्र

सारांश:

गजानन माधव मुक्तिबोध आधुनिक हिंदी कविता के उन महत्त्वपूर्ण कवियों में हैं जिन्होंने कविता को केवल निजी अनुभूति, सौंदर्यबोध और आत्माभिव्यक्ति का माध्यम न मानकर उसे सामाजिक, राजनीतिक और नैतिक यथार्थ की आलोचनात्मक पड़ताल का उपकरण बनाया। उनकी कविता में व्यक्ति और समाज, आत्मसंघर्ष और सामाजिक संघर्ष, मध्यवर्गीय चेतना और वर्गीय विषमता, बौद्धिकता और नैतिक दायित्व तथा स्वतंत्रता और सत्ता के अंतर्विरोध एक-दूसरे से गहरे जुड़े हुए दिखाई देते हैं। मुक्तिबोध का सामाजिक यथार्थ प्रत्यक्ष यथार्थवाद की सीमाओं में बँधा हुआ नहीं है; वे फैंटेसी, प्रतीक, बिंब, स्वप्न, भय, अंधकार और अतियथार्थपरक स्थितियों के माध्यम से सामाजिक संरचनाओं की छिपी हुई हिंसा को व्यक्त करते हैं। उनकी प्रमुख कविताएँ—'अँधेरे में', 'ब्रह्मराक्षस', 'चाँद का मुँह टेढ़ा है', 'भूल-गलती', 'लकड़ी का बना रावण' आदि—स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद के भारतीय समाज में व्याप्त वर्गीय असमानता, राजनीतिक अवसरवाद, सांस्कृतिक पाखंड, मध्यवर्गीय आत्मसंघर्ष और जनजीवन की पीड़ा को सामने लाती हैं। इस दृष्टि से मुक्तिबोध का काव्य सामाजिक यथार्थ और आत्मालोचन का एक विशिष्ट आधुनिक प्रतिमान निर्मित करता है।

बीज-शब्द: मुक्तिबोध, सामाजिक यथार्थ, मध्यवर्ग, वर्गचेतना, 'अँधेरे में', 'ब्रह्मराक्षस', आधुनिक हिंदी कविता, जनचेतना, मार्क्सवाद, वामपंथ,आत्मालोचना आदि।

शोध–लेख:

गजानन माधव मुक्तिबोध (1917–1964) आधुनिक हिंदी कविता के ऐसे रचनाकार हैं जिनके यहाँ कविता का संबंध जीवन की जटिल वास्तविकताओं से अत्यंत गहरे स्तर पर स्थापित होता है। वे नई कविता के प्रमुख कवियों में रहे और उनकी रचनात्मकता में आधुनिकतावादी सौंदर्यबोध, प्रगतिशील सामाजिक चेतना तथा मार्क्सवादी वैचारिक प्रभाव का विशिष्ट समन्वय दिखाई देता है। मुक्तिबोध को आधुनिकतावादी तथा वामपंथी-प्रगतिशील हिंदी साहित्य की प्रमुख हस्ती माना जा सकता है और उनकी कविता में सौंदर्य, राजनीति तथा नैतिकता के अंतर्संबंध को विशेष रूप से रेखांकित किया जा सकता है।

मुक्तिबोध के लिए सामाजिक यथार्थ केवल गरीबी, शोषण अथवा वर्ग-विभाजन का बाहरी चित्रण नहीं है। वे यह देखना चाहते हैं कि सामाजिक व्यवस्था मनुष्य के भीतर किस प्रकार प्रवेश करती है और उसकी चेतना, इच्छाओं, भय तथा नैतिक निर्णयों को किस प्रकार प्रभावित करती है। इसलिए उनकी कविता में बाहरी सामाजिक यथार्थ और आंतरिक मनोवैज्ञानिक यथार्थ साथ-साथ चलते हैं। उनकी रचनाओं में 'मैं' केवल व्यक्तिगत व्यक्ति नहीं, बल्कि उस मध्यवर्गीय मनुष्य का प्रतिनिधि है जो सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा रखता है, लेकिन अपने स्वार्थ, सुविधा, भय और समझौतों से मुक्त नहीं हो पाता।

मुक्तिबोध की सामाजिक दृष्टि मूलतः आलोचनात्मक और आत्मालोचनात्मक है। वे अपने समय की राजनीतिक तथा सामाजिक संरचनाओं को स्वीकार करने के बजाय उनकी अंतर्वस्तु को पहचानने का प्रयास करते हैं। उनके काव्य में स्वतंत्रता के बाद का भारत एक ऐसे समाज के रूप में उभरता है जिसमें राजनीतिक स्वतंत्रता के बावजूद आर्थिक और सामाजिक विषमता समाप्त नहीं हुई। इसीलिए उनके यहाँ 'अँधेरा' केवल रात या प्रकाश का अभाव नहीं है; वह सामाजिक चेतना के संकट, नैतिक पतन और व्यवस्था के भीतर मौजूद अदृश्य शक्तियों का प्रतीक बन जाता है।

मुक्तिबोध की सामाजिक दृष्टि का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि वे शोषण की आलोचना करते हुए स्वयं कवि और बुद्धिजीवी की भूमिका पर भी प्रश्न उठाते हैं। उनके लिए केवल व्यवस्था की आलोचना पर्याप्त नहीं है। व्यक्ति को अपने भीतर के स्वार्थ, भय और समझौतों की भी पहचान करनी होगी। इसी कारण उनकी कविता में आत्मसंघर्ष अत्यंत तीव्र है। आधुनिक हिंदी कविता में यह आत्मालोचनात्मक सामाजिक चेतना मुक्तिबोध की विशिष्ट पहचान बनती है।

समकालीन आलोचना भी मुक्तिबोध के काव्य में मध्यवर्गीय अनुभव और सामाजिक-राजनीतिक आधुनिकता के संबंध को महत्त्व देती है। ग्रेगरी यंग गूल्डिंग के शोध के अनुसार, मुक्तिबोध की रचनाएँ स्वतंत्रता-उत्तर भारत के उभरते निम्न-मध्यवर्गीय अनुभवों, उसकी आशाओं और आशंकाओं तथा आधुनिकता की आलोचना को सामने लाती हैं ।

'चाँद का मुँह टेढ़ा है' मुक्तिबोध की सामाजिक दृष्टि को समझने वाली अत्यंत महत्त्वपूर्ण कविता है। कविता में नगर, कारखाना, चिमनियाँ, अँधेरा, कर्फ्यू और भयावह चाँद जैसे बिंब आधुनिक औद्योगिक तथा राजनीतिक समाज की तनावपूर्ण स्थितियों को व्यक्त करते हैं। कविता की शुरुआत ही ऐसे शहरी वातावरण से होती है जहाँ अँधकार, दीवारें, अहाते और कारखाने का धुआँ एक भयपूर्ण सामाजिक दृश्य निर्मित करते हैं। मूल कविता में नगर और कारखाने की संरचना के बीच टेढ़े चाँद का बिंब सामाजिक यथार्थ को विकृत और अस्वाभाविक रूप में देखने की दृष्टि प्रदान करता है।

यहाँ 'चाँद' परंपरागत रूप से सौंदर्य और शीतलता का प्रतीक नहीं रह जाता। उसका 'टेढ़ा' होना ही आधुनिक समाज की विकृति का प्रतीक बन जाता है। कविता में कारखाने की चिमनियाँ और नगर का अँधकार औद्योगिक आधुनिकता के उस पक्ष को सामने लाते हैं जिसमें विकास के साथ-साथ मनुष्य का अलगाव, भय और असुरक्षा भी बढ़ती है।

मुक्तिबोध के यहाँ सामाजिक यथार्थ का महत्त्वपूर्ण आयाम गरीब और वंचित मनुष्य की स्थिति है। उनके काव्य में संस्कृति, राजनीति और सभ्यता की चमक के पीछे दबे हुए श्रम तथा पीड़ा को पहचानने की कोशिश दिखाई देती है। इसीलिए उनका सामाजिक यथार्थ सतही दृश्य-चित्रण न होकर सत्ता-संरचना के भीतर छिपे अंतर्विरोधों की खोज करता है।

'ब्रह्मराक्षस' मुक्तिबोध की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रतीकात्मक कविताओं में है। कविता में ब्रह्मराक्षस केवल कोई पौराणिक या काल्पनिक प्राणी नहीं है। वह उस बुद्धिजीवी का प्रतीक है जिसके पास ज्ञान तो है, लेकिन उसका ज्ञान सामाजिक जीवन से कट गया है। वह अपनी बौद्धिक क्षमता और सामाजिक उपयोगिता के बीच फँस जाता है।

कविता का ब्रह्मराक्षस एकांत, आत्मपीड़ा और आत्मविश्लेषण में डूबा हुआ दिखाई देता है। वह ज्ञान का संचय करता है, लेकिन उसका ज्ञान सामाजिक परिवर्तन में परिणत नहीं हो पाता। कविता के अंत में कवि उसके अधूरे कार्य और पीड़ा को आगे बढ़ाने की इच्छा व्यक्त करता है। मूल कविता में कवि स्वयं को ब्रह्मराक्षस का "सजल उर शिष्य" बनना चाहता हुआ प्रस्तुत करता है, ताकि उसके अधूरे कार्य को सार्थक निष्कर्ष तक पहुँचाया जा सके।

यहाँ मुक्तिबोध बौद्धिक व्यक्ति के सामाजिक दायित्व का प्रश्न उठाते हैं। ज्ञान यदि समाज से अलग होकर केवल आत्मसंतुष्टि का साधन बन जाए तो वह अंततः आत्मपीड़ा और निष्क्रियता में बदल सकता है। इस दृष्टि से 'ब्रह्मराक्षस' भारतीय मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी की विडंबना का प्रतिनिधि प्रतीक बन जाता है।

'अँधेरे में' मुक्तिबोध की सामाजिक चेतना का सबसे व्यापक और जटिल काव्यात्मक रूप है। यह लंबी कविता व्यक्ति के अंतर्मन में उपस्थित भय, अपराध-बोध, सामाजिक असुरक्षा और परिवर्तन की आकांक्षा को व्यापक राजनीतिक-सामाजिक संदर्भ से जोड़ती है। मुक्तिबोध की रचनात्मक प्रक्रिया में यह कविता विशेष महत्त्व रखती है और उनकी आधुनिकतावादी तथा सामाजिक दृष्टि के अनेक आयाम इसमें एक साथ दिखाई देते हैं।

'अँधेरे में' का केंद्रीय 'मैं' सामाजिक रूप से निष्क्रिय बुद्धिजीवी के संकट से गुजरता है। वह अन्याय को पहचानता है, लेकिन स्वयं भी उस व्यवस्था से पूरी तरह अलग नहीं हो पाता। यही अंतर्विरोध कविता को केवल राजनीतिक कविता न बनाकर गहरे आत्मालोचन का काव्य बनाता है।

कविता में अँधेरा सामाजिक व्यवस्था की अस्पष्टता और भय का प्रतीक है। उसके भीतर चलने वाली यात्रा वस्तुतः व्यक्ति की चेतना की यात्रा भी है। यहाँ स्वप्न, फैंटेसी और यथार्थ एक-दूसरे में मिल जाते हैं। मुक्तिबोध की फैंटेसी सामाजिक यथार्थ से पलायन नहीं करती; बल्कि वह यथार्थ के छिपे हुए और अमूर्त पक्षों को अधिक तीव्रता से सामने लाती है।

समकालीन शोध में भी 'अँधेरे में' को मुक्तिबोध की राजनीतिक चेतना, आत्मसंघर्ष और सामाजिक आलोचना के केंद्र में रखा गया है। एक हालिया अध्ययन के अनुसार मुक्तिबोध की लंबी कविताओं में विद्रोह केवल नारे के रूप में नहीं, बल्कि आत्मालोचना, वर्गचेतना, नैतिक साहस और जनपक्षधरता से निर्मित होता है।

मुक्तिबोध के सामाजिक यथार्थ की एक प्रमुख विशेषता वर्गीय विषमता की पहचान है। उनकी कविता में समाज अलग-अलग हितों और शक्तियों के संघर्ष से निर्मित दिखाई देता है। वे आर्थिक शोषण को केवल बाहरी घटना के रूप में नहीं देखते, बल्कि यह भी दिखाते हैं कि आर्थिक व्यवस्था मनुष्य के मानसिक और नैतिक जीवन को प्रभावित करती है।

उनकी जनपक्षधरता भावुक सहानुभूति मात्र नहीं है। वे गरीब और शोषित व्यक्ति की स्थिति को समझने के साथ-साथ मध्यवर्ग की भूमिका पर भी प्रश्न करते हैं। मध्यवर्ग व्यवस्था का आलोचक भी है और कई बार उसी व्यवस्था का लाभार्थी भी। इस द्वंद्व को मुक्तिबोध अत्यंत तीव्रता से अभिव्यक्त करते हैं। उनके काव्य में 'जन' कोई अमूर्त शब्द नहीं है। जन का अर्थ उन लोगों से है जिनके श्रम पर समाज की भौतिक संरचना निर्मित होती है, लेकिन जिनकी आवाज सत्ता और संस्कृति के केंद्रों में दब जाती है। इसीलिए मुक्तिबोध की कविता में शहर, कारखाना, गलियाँ, अँधेरी बस्तियाँ, गरीब मनुष्य और भयपूर्ण राजनीतिक वातावरण बार-बार सामने आते हैं। आधुनिक भारतीय शहर के उनके चित्रण में असुरक्षा और अलगाव की अनुभूति पर हाल के अकादमिक अध्ययन ने भी विशेष बल दिया है।

मुक्तिबोध की कविता में राजनीति केवल चुनाव अथवा राजनीतिक दलों तक सीमित नहीं है। सत्ता उनके लिए एक व्यापक सामाजिक संरचना है जो व्यक्ति के विचार, भाषा, संस्कृति और नैतिकता को प्रभावित करती है। इसीलिए उनकी कविता में राजनीतिक सत्ता के साथ सांस्कृतिक सत्ता और बौद्धिक सत्ता की भी आलोचना मिलती है।

‘चाँद का मुँह टेढ़ा है’ में कर्फ्यू, कारखाने और भय का वातावरण राजनीतिक-सामाजिक दमन की ओर संकेत करता है। इसी तरह ‘अँधेरे में’ में सत्ता और भय का संबंध बार-बार उभरता है। मुक्तिबोध का कवि सत्ता से प्रश्न पूछने वाला कवि है, लेकिन वह यह भी जानता है कि सत्ता की आलोचना करने वाले बुद्धिजीवी के भीतर भी समझौते और स्वार्थ मौजूद हो सकते हैं।

यही कारण है कि उनकी कविता में सामाजिक यथार्थ और नैतिक यथार्थ एक-दूसरे से अलग नहीं हैं। यदि व्यक्ति स्वयं अपने नैतिक दायित्व से भागता है, तो केवल बाहरी सत्ता को दोष देने से सामाजिक परिवर्तन संभव नहीं होगा।

मुक्तिबोध की काव्य-शैली का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष फैंटेसी है। पहली दृष्टि में उनकी कविताओं में उपस्थित राक्षस, अँधेरी सुरंगें, भयावह चेहरे, स्वप्न और असामान्य दृश्य वास्तविक जीवन से दूर दिखाई दे सकते हैं। लेकिन वास्तव में ये सभी सामाजिक यथार्थ को अधिक गहराई से व्यक्त करने के साधन हैं।

‘ब्रह्मराक्षस’ में राक्षस बौद्धिक अलगाव का प्रतीक है; ‘चाँद का मुँह टेढ़ा है’ में टेढ़ा चाँद सामाजिक विकृति का; जबकि ‘अँधेरे में’ का अँधकार व्यक्ति और व्यवस्था दोनों के संकट का। इस प्रकार मुक्तिबोध फैंटेसी के माध्यम से उस यथार्थ को दृश्य रूप देते हैं जिसे सामान्य यथार्थवादी भाषा पूरी तरह व्यक्त नहीं कर सकती।

सरकारी शैक्षिक सामग्री में भी मुक्तिबोध की फैंटेसी को उनकी कविता की विशिष्ट विशेषता बताते हुए ‘ब्रह्मराक्षस’, ‘चाँद का मुँह टेढ़ा है’ और ‘अँधेरे में’ में यंत्रणा, संत्रास, आक्रोश, विद्रोह, भूख, पीड़ा, मृत्यु और दरिद्रता जैसे जीवनानुभवों की उपस्थिति रेखांकित की गई है।

मुक्तिबोध की भाषा उनके सामाजिक यथार्थ की तरह ही जटिल और बहुस्तरीय है। वे संस्कृतनिष्ठ शब्दावली, बोलचाल, वैज्ञानिक-तकनीकी शब्दों, राजनीतिक शब्दों और असामान्य बिंबों को एक साथ प्रयोग करते हैं। उनकी लंबी कविताओं की भाषा पारंपरिक छंदबद्धता से मुक्त होकर विचार और अनुभव की गति के साथ आगे बढ़ती है।

उनकी कविता में वाक्य-विन्यास कई बार असामान्य हो जाता है। यह असामान्यता केवल शैलीगत प्रयोग नहीं है; यह आधुनिक जीवन की अस्थिरता और मानसिक तनाव को अभिव्यक्त करती है। शहर और औद्योगिक आधुनिकता को चित्रित करने के लिए वे कारखानों, चिमनियों, गलियों, अँधेरे, दीवारों और राजनीतिक संकेतों को कविता में लाते हैं। इस प्रकार शिल्प और सामाजिक अंतर्वस्तु के बीच गहरा संबंध स्थापित होता है।

मुक्तिबोध की सामाजिक दृष्टि आज भी इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि आधुनिक समाज में आर्थिक असमानता, राजनीतिक सत्ता का केंद्रीकरण, सामाजिक अलगाव, बौद्धिक समझौते और सांस्कृतिक पाखंड जैसे प्रश्न समाप्त नहीं हुए हैं। उनकी कविता हमें यह प्रश्न पूछने के लिए बाध्य करती है कि बुद्धिजीवी का सामाजिक दायित्व क्या है और व्यक्ति अपने समय के अन्याय के प्रति कितना ईमानदार है।

मुक्तिबोध को केवल ‘मार्क्सवादी कवि’ कहकर सीमित करना उनके काव्य की व्यापकता को कम करना होगा। उनकी कविता में मार्क्सवादी वर्गचेतना के साथ अस्तित्वगत संकट, मनोवैज्ञानिक तनाव, नैतिक आत्मालोचन और आधुनिकतावादी प्रयोग भी हैं। इसी कारण वे हिंदी की आधुनिक कविता में एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनका काव्य सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा और व्यक्ति के भीतर उस परिवर्तन की तैयारी—दोनों को एक साथ सामने रखता है।

निष्कर्ष:

मुक्तिबोध के काव्य में सामाजिक यथार्थ बहुआयामी और अंतर्विरोधपूर्ण रूप में उपस्थित है। वे समाज को केवल बाहर से देखने वाले कवि नहीं हैं; वे सामाजिक संरचना को व्यक्ति के अंतर्मन में प्रवेश करते हुए देखते हैं। वर्गीय विषमता, राजनीतिक सत्ता, सांस्कृतिक पाखंड, मध्यवर्गीय निष्क्रियता, बौद्धिक दायित्व और जनपीड़ा उनके काव्य के केंद्रीय सरोकार हैं।

'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में आधुनिक नगर और सत्ता-संरचना का विकृत चेहरा, 'ब्रह्मराक्षस' में सामाजिक दायित्व से कटे बुद्धिजीवी की त्रासदी और 'अँधेरे में' में मध्यवर्गीय चेतना का गहरा आत्मसंघर्ष—इन सबको मिलाकर मुक्तिबोध का सामाजिक यथार्थ निर्मित होता है। उनकी फैंटेसी यथार्थ से पलायन नहीं, बल्कि यथार्थ की गहरी परतों तक पहुँचने का माध्यम है।

अतः मुक्तिबोध का काव्य आधुनिक हिंदी साहित्य में सामाजिक यथार्थ की ऐसी विशिष्ट अवधारणा प्रस्तुत करता है जिसमें बाहरी सामाजिक संघर्ष और आंतरिक नैतिक संघर्ष एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। उनका आग्रह केवल व्यवस्था बदलने का नहीं, बल्कि उस मनुष्य को बदलने का भी है जो व्यवस्था का हिस्सा है। यही आत्मालोचनात्मक जनपक्षधरता मुक्तिबोध को आज भी प्रासंगिक और विशिष्ट बनाती है।

संदर्भ:

1. Goulding, Greg. "Muktibodh, Gajanan Madhav (1917–1964)." Routledge Encyclopedia of Modernism, Taylor & Francis, 26 Apr. 2018.
2. Goulding, Gregory Young. The Cold War Poetics of Muktibodh: A Study of Hindi Internationalism, 1943–1964. University of California, 2015.
3. Goulding, Greg. "Urban Space across Genre: The Cities of Gajanan Madhav Muktibodh." The Oxford Handbook of Modern Indian Literatures, Oxford University Press, 2023, pp. 531–545.
4. मुक्तिबोध, गजानन माधव। चाँद का मुँह टेढ़ा है। भारतीय ज्ञानपीठ। 'ब्रह्मराक्षस' कविता, पृ. 37.
5. "मुक्तिबोध की लंबी कविताओं में वर्तमान सामाजिक यथार्थ और विद्रोह।" IJFMR, vol. 8, no. 3, 2026.
6. "सत्यमेव जयते।" Ministry of Education, Government of India, 2026.